रामचन्द्रिका में रस-योजना

रस काव्य की आत्मा है। जिस प्रकार आत्मा-विहीन जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार रस के अभाव में किसी भी काव्य का प्रणयन नहीं हो सकता, चाहे प्रणेता रसवादी हो या अलंकारवादी। केशव को अलंकारों से अथाह ममत्व है और इसी ममत्व के कारण से प्रायः भावों का गला भी घोंट देते हैं, किन्तु इन्हें रस की महत्ता भी स्वीकार है। रस का विवेचन करते समय इन्होंने शृंगार रस को रसराज माना है, बल्कि अन्य सारे रसों को इसी रस के अन्तर्गत समाहित करने का प्रयास भी किया है। अतः रामचन्द्रिका में रस-योजना का होना स्वाभाविक है। रामचन्द्रिका में मुख्यतः तीन रसों की योजना की गई है—शृंगार, वीर, करुण और रौद्र। यत्र-तत्र अन्य रस भी परिलक्षित होते हैं।

शृंगार रस

सामाजिक के हृदय में संस्कार-रूप से स्थित रति स्थायी भाव जब विभाव अनुभाव और संचारी भावों से अभिव्यक्त होकर आस्वाद का विषय बन जाता है तो उससे जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे शृंगार रस कहते हैं। शृंगार के दो भेद होते हैं—संयोग शृंगार और वियोग शृंगार। इन्हें ही क्रमशः सम्भोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार भी कहते हैं। रामचन्द्रिका में पहले वियोग शृंगार का वर्णन हुआ है और फिर संयोग शृंगार का।

वियोग-शृंगार में प्रेमी-प्रेमिका किसी कारण के वशीभूत होकर एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं और विरह, दुःख के कारण उनकी मनः स्थितियों में नाना परिवर्तन आते रहते हैं। काव्य-शास्त्र में इन परिवर्तनों को दशा कहा गया है। वियोग की गुण-कथन आदि दस दशाएँ मानी गई हैं।

वियोग शृंगार का वर्णन सीता के अपहरण के साथ ही शुरू होता है। रावण सीता को चुरा ले गया है। राम जब मृगया से लौटकर अपनी पर्णकुटी में सीता को नहीं देखते तो वे विरह-दुःख के कारण एकदम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। उन्हें सन्देह होने लगता है कि संभवतः न तो वह उनकी पर्णकुटी है और न वास्तविक लक्ष्मण ही उनके साथ हैं—

'अब है यह पर्नकुटी किधौं और किधौं वह लछिमन होइ नहीं।'

वियोग में राम इतने उत्मत्त हो जाते हैं कि वे सजीव और निर्जीव का भेद ही भूल जाते हैं। वे चक्रवाक-युगल से पूछते हैं—

'ससि की अवलोकन दूर किये। जिनके मुख की छबि देखि जिये॥
कृत चित्त चकोर कछूक धरो। सिय देहु गताय सहाय करो॥

और पूछते हैं करुणा वृक्ष से—

'कहि केसव जाचक के अरि चंपक सोक असोक भये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीच्छन जानि तजे डरिकै।
सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आते रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिय को कुछ सोधु कहौ करुनामय है करुना करुना करकै॥'

वियोग का समय इतना लम्बा प्रतीत होने लगता है कि वह काटे नहीं कटता, विशेषतः रात। प्रकृति के शीतलता करने वाले उपादान भी जताने लगते हैं। यही दशा राम की भी हो जाती है। अपनी इस दशा का वर्णन वे लक्ष्मण से इन शब्दों में करते हैं—

'हिमांसु सूर सी लगै सो बात बज्र सी बहै।
दिसा जगै कृसानु ज्यौं बिलेप अंग को दहै॥
बिसेस कालराति सों कराल राति मानिये।
बियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये॥'

विरह दुःख के कारण वर्षा ऋतु और शरद ऋतु भी राम को अत्यन्त दुःखदाई प्रतीत होती हैं। वे समाज से अलग होकर सिंह की भाँति बड़ी-बड़ी गुफाओं में छिपे रहते हैं, केशर की क्यारियों को देखकर भयभीत हो जाते हैं, दिन के प्रकाश से उदासीन रहते हैं, घुमड़ते बादलों को देखकर ज्वास की भाँति जलने लगते हैं और सारी रातें जागकर ही काटते हैं—

'दीरघ दरीन बसै केसीदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बन करी ज्यौं कांपत हैं।
बासर की सम्पत्ति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चन्द्र चितै चौगुनी चँपत हैं।'
केका सुनि ब्याल ज्यौं बिलास जात घनस्याम
घनन की घोरन जवासों ज्यों तपन हैं।
भौंर ज्यौं भँवत बन जोगी ज्यौं जगत रैनि,
साकत ज्यौं नाम राम तेरोई जपत हैं।'

राम की भाँति सीता भी वियोग के दुःख से कम दुःखी नहीं है। उनकी समूची वेणी उलझ गई है, साड़ी मैली हो गई है। वे सदा राम का नाम रटती रहती हैं। अपनी वियोगावस्था में वे ऐसी प्रतीत होती हैं मानो चित्त की चिन्ताओं से ग्रस्त बुद्धि हो, या दाँतों के बीच में जीभ हो या राहु की स्त्रियों ने चन्द्रकला को घेर लिया हो—

'धरे एक बेनी मिली मैल सारी। मृनाली मनो पंक तें काढ़ि डारी॥
सदा राम नाम रहै दीन बानी। चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी॥'

× × ×

'ग्रसी बुद्धि-सी चित्त चिंतानि मानो। किधौं जीभ दंतावली मैं बखानो॥
किधौं घेरिकै राहु नारीन लीनी। कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनी॥

विरह-दुःख के कारण सीता का मन भी, राम के मन की भाँति, व्यवस्थित नहीं रहता। उन्हें भी सजीव और निर्जीव में कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता। इसीलिए राम की मुद्रिका पाकर वे प्रश्न करने लगती हैं और उसको उपालंभ देती हुई कहती हैं—

'श्री पुर मैं बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कटि मुंदरी अब तियन की, को करि है परतीति॥'

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचन्द्रिका में वियोग शृंगार का काफी वर्णन हुआ है, यद्यपि इसमें अपेक्षित भावात्मकता का अभाव है।

संयोग शृंगार का वर्णन रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में है, जहाँ राम राजा बनकर सीता के साथ-साथ अनेक अन्य रानियों के साथ आनन्द में निमग्न रहते हैं।

वीर रस—रामचन्द्रिका में प्रतिपादित दूसरा मुख्य रस वीर रस है। सामाजिक के हृदय में संस्कार रूप से स्थित उत्साह स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से अभिव्यक्त होकर आस्वाद का विषय बन जाता है तब उससे जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे वीर रस कहते हैं। शृंगार रस की भाँति, रामचन्द्रिका में, वीर रस का काफी विस्तार से वर्णन हुआ है। रामचन्द्रिका में वर्णित युद्धों में वीर-रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। कुम्भकर्ण युद्धभूमि में राम से कहता है—

'न हौं ताड़का, हौं सुबाहौ न मानो। हौं संभु कोदंड सांची बखानो।
न हौं ताल, बाली, खरे जाहि मारो। न हौं दूषनैं सिंधु सूझे निहारो॥
सुरी आसुरी सुन्दरी भोगकर्नै। महाकाल को काल हौं कुम्भकर्नै॥
सुनौ राम संग्राम को तोहि बोलौं। बढ़ो गर्व लंकाहि आये सु खोलौं॥'

अर्थात्—हे राम! मुझे ताड़का या सुबाहु मत समझना जिसको तुमने सहज ही मौत के घाट उतार दिया। मैं शिव का धनुष भी नहीं हूँ जिसे तुमने फूल की तरह तोड़ डाला। मैं ताल, बाली और खर नहीं हूँ जिसे तुमने ..़ कर रख दिया। मैं खरदूषण भी नहीं हूँ जो तुम्हारे बाणों का लक्ष्य बन गया है। मैं देव और असुर कन्याओं से भोग करने वाला तथा महाकाल का भी काल कुम्भकर्ण हूँ। मैं तुम्हें युद्ध के लिए चुनौती देता हूँ। लंका पर चढ़ाई करके तुम्हें गर्व हो गया है। आज संसार के सामने तुम्हारा बल प्रकट हो जायेगा।

मकराक्ष के ये शब्द भी वीर-रस से ओतप्रोत हैं—

'कहा कुंभकर्नै कहा इन्द्रजीतौ। करै सोइबो वा करै जुद्ध भीतौ॥
सु जौलौं जियो हौं सदा दास तेरो। सिया को सकै लै सुनो मंत्र मेरो॥
महाराज लंका सदा राज कीजै। करौं जुद्ध मोको बिदा बेगि दीजै॥
हतौं राम स्यों बंधु सुग्रीव मारौं। अयोध्याहि लै राजधानी सुधारौं॥'

अर्थात्—मेरे सामने कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत क्या हैं? एक सोया करता था और दूसरा भयभीत होकर युद्ध किया करता था। जब तक आपका यह दास जीवित है तब तक सीता को यहाँ से कौन ले जा सकता है? महाराज! आप निश्चित होकर लंका का

राज्य कीजिए और मुझे शीघ्र युद्ध करने के लिए विदा कीजिए। विश्वास कीजिये, मैं युद्ध में राम को उनके बन्धु लक्ष्मण और सुग्रीव आदि के साथ मार डालूँगा और अयोध्या पर अधिकार करके उसे आपकी राजधानी में मिला दूँगा।

इसी प्रकार शत्रुघ्न के बाणों से जब लव मूर्च्छित हो जाता है तो कुश अपनी माता सीता से कहता है—

'रिपुहि मारि संहारि दल जय ते लेहुँ छँड़ाय।
लवहि मिलैहौं देखिहौं देखिहों माता तेरे पाँय॥'

अर्थात्—माँ! तू शोक मत कर। यदि शत्रु स्वयं यमराज भी है तो भी मैं उसे मारकर और उसके दल को नष्ट करके लव को उससे छुड़ा लूँगा और तभी आकर मैं आपके चरणों के दर्शन करूँगा।

करुण रस—सामाजिक के हृदय में संस्कार रूप से स्थित शोक स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से अभिव्यक्त होकर आस्वाद का विषय बन जाता है तब उससे जो आनंद प्राप्त होता है, उसे करुण रस कहते हैं। रामचन्द्रिका में इस रस का वर्णन सीता-हरण, लक्ष्मण की मूर्च्छा और मेघनाद-वध के अवसर पर हुआ है। सीता को पर्णशाला में न देखकर राम शोक-विह्वल होकर कहते हैं—

'निज देखौं नहीं सुभ सीतहि कारन कौन कहौ अब हीं।
अति मोहित कै बन माँझ गई सुर मारग में मृग मारयौ जहीं॥
कटु बात कछू तुम सो कहि आई किधौं तेहि त्रास डराय रहीं।
अब है यह पर्नकुटी किधौं और किधौं वह लछिमन होइ नहीं॥'

सीता के विलास में यह रस और भी अधिक मर्मस्पर्शी बन गया है—

'हा राम! हा रमन! हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ बस जानहु मोहि बीर॥
हा पुत्र लछिमन! छुड़ावहु बेगि मोहीं।
मार्तंडबंस जस की सब लाज तोहीं॥'

लक्ष्मण-मूर्च्छा के अवसर पर राम का यह विलाप भी शोकानुभूति प्रदान करता है—

'लछिमन राम जहीं अबलोक्यो। नैनत तेंन रह्यो जल रोक्यो॥
बारक लछिमन मोहि बिलोको। मोकहं प्रान चले तजि रोको॥
हौं सुमिरों गुन केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे॥
लोचन बान तुही धन नेरो। तू बल विक्रम वारक हेरो॥
तू विन हौं पल प्रानन न राखौं। सत्य कहौं कछु झूठ न भाखों॥

मेघनाद की मृत्यु पर रावण का विलाप भी करुण रस से परिपूर्ण है। रावण मंदोदरी से कहता है—

मोहि रही इतनी मन संका। देन न पाई विभीषन लंका॥
बोलि उठो प्रभु को प्रप्त पारौ। नातरु होत है मो मुख कारौ॥'

'तुम अब सीतहि देहु न देहू। बिनु सत बंधु धरौं नहि देहू॥
यहि तन जो तजि लाजहिं रैहौं। बन बसि जाय सबै दुख सैहौं॥'

यद्यपि रामचन्द्रिका में करुण रस का वर्णन नहीं है, किन्तु जितना भी है, वह काफी सफल और मर्मस्पर्शी है।

रौद्र रस—सामाजिक के हृदय से संस्कार रूप से स्थित क्रोध स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से अभिव्यक्त होकर आस्वाद का विषय बन जाता है, तब उसमें जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे रौद्र रस कहते हैं।

रामचन्द्रिका में रौद्र रस का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। राम परशुराम के मुँह से अपने गुरु की निन्दा सुनकर क्रोध में भर कर कहते हैं—

'भगन कियो भाव धनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं बिधि सृष्टि ईस आसन ते भालौं॥
सकल लोक सहरहुँ सेस सिर ते धर तारौं।
सप्त सिन्धु मिलि जाहि होइ सबही तम भारौं॥
अति अमल जोति नारायनी कह केसव बुधि जाय बर।
भृगुनंद संभारु कुठार हों कियो सरासन युक्त सर॥'

राम के अत्यन्त क्रोध का दूसरा अवसर तब आता है जब लक्ष्मण को शक्ति लग जाती है और विभीषण राम को यह बताते हैं कि सूर्योदय होते ही लक्ष्मण का प्राणांत हो जायेगा। तब राम अत्यन्त क्रोधित होकर कहते हैं—

'करि आदित्य अदृष्ट जम करों अष्ट बसु रूद्रन बारि समुद्र करौं गंधर्व सर्ब पसु।
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इन्द्र अब।
बिद्याधरन अबिद्य करों बिनु सिद्धि सिद्ध सब॥
निजु होहि दासि दिति की अदिति, अनिल अनल मिट जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उबत ही, करों असुर संसार बल॥'

उपर्युक्त रसों के अतिरिक्त रामचन्द्रिका में अद्भुत, भयानक, हास्य तथा शान्त आदि रसों का भी वर्णन हुआ है, किन्तु यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है।

अंगीरस—रामचन्द्रिका में रस-योजना का विवेचन करने के पश्चात् भी यह प्रश्न शेष रह जाता है कि रामचन्द्रिका का अंगीरस क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि अंगीरस की क्या विशेषता होती है। अंगीरस काव्य में प्रमुख रस होता है और अन्य रस उसके सहायक होते हैं। कवि का प्रतिपाद्य भी अंगीरस ही होता है। रामचन्द्रिका का प्रतिपाद्य राम की चन्द्रिका (वैभव) है। इसीलिए शृंगार रस का इसमें सर्वाधिक विस्तार से वर्णन हुआ है और रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में तो यही रस परिलक्षित होता है। अन्य रस इसके विस्तार में समा गये हैं। अतः शृंगार रस को ही रामचन्द्रिका का अंगीरस मानना चाहिए।